पाठ्यक्रम - ६

६ अ दुःख के पाँच साधन - पाप

पाप का स्वरूप -

जिन कार्यों को करने से जीव दुर्गति का पात्र बनता है, उसे इस लोक में व परलोक में निन्दा तथा धिक्कार के साथ-साथ अनेक कष्टों को सहन करना पड़ता है, उसे पाप कहते हैं।

पाप के भेद -

पाँच पाप -१. हिंसा, २. झूठ, ३. चोरी
४. कुशील (अब्रह्म) और ५. परिग्रह है।

हिंसा पाप -

प्रमाद के कारण किसी दूसरे जीव के अथवा स्वयं के प्राणों का घात करना हिंसा पाप कहलाता है। इस पाप को करने वाले हिंसक, क्रूर, निर्दयी, हत्यारे कहलाते हैं। किसी को मार-पीट कर दुखी करना, धर्म मानकर पशु आदि की बलि चढ़ाना, पुतला जलाना, मिठाई आदि में पशु का आकार बनाकर काटना, खाना, वीडियों गेम में चिड़िया आदि मारना हिंसा पाप है।

हिंसा से बचने के उपाय -

1. राग-द्वेष बढ़ाने वाले कुटिल विचारों को छोड़ना चाहिए।
2. चलते समय नीचे देखकर चलना चाहिए।
3. वस्तुओं को उठाते-रखते समय सावधानी रखना चाहिए।
4. रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए अर्थात् सूर्य प्रकाश में ही भोजन-पान करना चाहिए।
5. त्रस जीवों की रक्षा का शक्त्यानुसार संकल्प लेना चाहिए।
6. हिंसा परिणामों को उत्पन्न करने वाले सिनेमा आदि नहीं देखना चाहिए।
7. बिना प्रयोजन घूमना नहीं, पानी फेंकना नहीं एवं पेड़-पौधों, फूल, पत्ती आदि तोड़ना नहीं चाहिए।

मुझे है काम ईश्वर से

मुझे है काम ईश्वर से, जगत रूठे तो रूठन दे,
बैठ संगत में संतन की, करूँ कल्याण मैं अपना।
लोग दुनिया के भोगों में, मौज माने तो लूटन दे,
मुझे है काम ....
कुटुंब परिवार सुत दारा, लाज लोकन की छूटन दे,
प्रभु के भजन करने में, अगर छूटे तो छूटन दे
स्वयं के ध्यान करने की, लगी दिल में लगन मेरे,
मुझे है काम ....
धरि सिर पाप की मटकी, मेरे गुरुदेव ने झटकी,
वो 'ब्रह्मानंद' ने पटकी, अगर फूटे तो फूटन दे।
प्रीत संसार विषयों से, अगर टूटे तो टूटन दे ।।
मुझे है काम ....

झूठ पाप -

जिस बात या जिस घटना को जैसा सुना अथवा देखा हो वैसा न कहकर अन्य प्रकार से कहना ''झूठ पाप'' कहलाता है। जिन वचनों के कहने से किसी अन्य पर विपत्ति आ जावे, किसी के प्राणों का घात हो जावें, ऐसा सत्य वचन भी झूठ कहलाता है।

झूठ के अन्य रूप -

मर्मच्छेदी वचन, कठोर वचन, उद्वेगकारी वचन, बैरोत्पादक, कलहकारी वचन, भयोत्पादक तथा अवज्ञाकारी वचन- इस प्रकार के अप्रिय वचन, हास्य, भीति, लोभ, क्रोध, द्वेष इत्यादि कारणों से बोले जाने वाले वचन सब असत्य भाषण (झूठ) है। झूठ, अनृत, असत्य ये एकार्थवाची हैं।

झूठ पाप से बचने हेतु निम्न कार्य करना चाहिए।

१. हमेशा सत्य बोलना चाहिए क्योंकि एक झूठ को छिपाने के लिए सौ झूठ और बोलना पड़ता है।
२. क्रोध और लोभ का त्याग करना चाहिए क्योंकि इन कारणों से भी व्यक्ति झूठ बोलता है।

३. हमेशा निर्भय रहना चाहिए।
४. व्यर्थ की हँसी - मजाक, वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।
५. आगम के अनुसार हित-मित-प्रिय वचन बोलना चाहिए।

जिस पर जो गुजरी है उसे भूल जाना चाहिए।
छोटी-सी जिन्दगी है सदा मुस्कराना चाहिए।।

६. तू मूर्ख है, अज्ञानी है इत्यादि कठोर वचन, तू अंधा है लगड़ा है, इत्यादि कठोर वचन नहीं बोलना चाहिए।
७. झूठा उपदेश देना, पत्र पत्रिकाओं में गलत बात छापना, दूसरों की निन्दा इत्यादि कार्य नहीं करना चाहिए।

चोरी पाप -

बिना दिए किसी की गिरी, रखी या भूली हुई वस्तु को ग्रहण करना अथवा उठाकर किसी को दे देना चोरी पाप है।

चोरी महापाप -

धन को मनुष्य का बारहवां प्राण कहा है जिसका धन हरण किया जाता है उसको जैसा मरने में दु:ख होता है वैसा ही दु:ख धन के नाश हो जाने पर होता है। आचार्यों ने सुअर का घात करने वाले, मृगादिक को पकड़ने वाले तथा परस्त्री गमन करने वाले से भी अधिक पापी ''चोर'' को कहा है।

चोरी के अन्य रूप -

चोरी करने के उपाय बताना, चोरी का माल खरीदना, राज्य नियमों के विरुद्ध कालाबजारी करना, टेक्स चुराना, मापने व तौलने के उपकरणों में कमती बढ़ती रखना, मिलावट करना, अन्याय पूर्वक धन कमाना इत्यादि चोरी पाप के ही अन्य रूप है।

बड़ा कौन

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दो शिष्यों में महा विवाद छिड़ गया कि उनमें से बड़ा कौन है? दोनों एक-दूसरे को छोटा बता रहे थे। विवाद का जब अन्त न हुआ तो वे दोनों शिष्य स्वामी जी के पास गए। उन्होंने दोनों शिष्यों की समस्या को सुना स्वामी जी ने उत्तर दिया अरे! इसका हल तो बड़ा सरल है। तुममें से जो दूसरे को बड़ा समझे वही बड़ा है। फिर तो विवाद का स्वरूप ही बदल गया। अब वे दोनों शिष्य एक-दूसरे को बड़ा कहने लगे।

चोरी से बचने हेतु निम्न कार्य करना चाहिए -

१. बिना पूछे, आज्ञा लिए किसी के स्वामित्व की वस्तु नहीं लेना।
२. आवश्यकता से अधिक वस्तु को ग्रहण नहीं करना।
३. विक्रय कर, आय कर, बिजली पानी आदि के बिल का भुगतान करना।
४. दूसरे की वस्तु पर अपना स्वामित्व नहीं जमाना।
५. सधर्मियों के साथ विसंवाद नहीं करना।

कुशील पाप -

जिनका आपस में विवाह संबंध हुआ हो, ऐसे स्त्री-पुरुषों का एक दूसरे को छोड़कर अन्य किसी पुरुष अथवा स्त्री से संबंध रखने को (रमण करने को) कुशील पाप कहते हैं। **स्त्री पुरुष की राग जन्य चेष्टा, गाली बकना, बुरा आचरण करना अथवा विवाह के पूर्व लड़के-लड़कियों का वासना की दृष्टि से एक-दूसरे को मित्र बनाना, छूना, स्कूल कोचिंग में एक-दूसरे से हाथ मिलाकर बात करना, एक दूसरे को ताली देना (हाई फाई), हाथ पकड़ना, गले में हाथ डालना, चुम्बन लेना, देखना इत्यादि कुशील पाप है।**

कुशील पाप के कारण -

स्त्री संबंधी विषयों की अभिलाषा रखना, अनंग क्रीड़ा, शरीर को संस्कारित करना, राग वर्धक गंदे चित्र, फिल्म, नाटक आदि देखना, वेश्या गमन करना इत्यादि अब्रह्म पाप के कारण है।

कुशील पाप के बचने के उपाय -

अब्रह्म पाप से बचने के लिए निम्न उपाय हैं:-

१. वृद्धा, बाला और यौवन अवस्था वाली स्त्री को देखकर अथवा उनकी तस्वीरों को देखकर माता, पुत्री, बहन समान समझ स्त्री सम्बन्धी कथादि का अनुराग छोड़ना। एवं इसी प्रकार स्त्रियों द्वारा पुरुष में रागवर्धक वार्ता को छोड़ना।
२. शरीर की मलिनता, क्षणभंगुरता का विचार करना।
३. इष्ट एवं गरिष्ट पदार्थों का सेवन नहीं करना।

४. जो स्व को इष्ट हो परन्तु शिष्ट जनों के द्वारा धारण करने योग्य नहीं हैं ऐसे विचित्र प्रकार के वस्त्र, वेशभूषा, आभरण आदि का त्याग करना।

५. व्यभिचारी एवं कामी पुरुषों की संगति नहीं करना। विधर्मी लड़की-लड़कों की संगती नहीं करना।

परिग्रह पाप -

जमीन, मकान, धन, धान्य, गाय, बैल इत्यादि पदार्थों के प्रति मूर्च्छा (आसक्ति) रूप परिणाम रखना, 'यह मेरा है मैं इसका स्वामी हूँ' इस प्रकार का ममत्व परिणाम परिग्रह है।

परिग्रह के दो भेद है १. बाह्य परिग्रह एवं २. अंतरंग परिग्रह

बाह्य परिग्रह दस प्रकार का है - क्षेत्र (खेतादि), वास्तु (मकानादि), हिरण्य (चांदी), सुवर्ण(सोना), धन (गौ आदि पशु), धान्य (गेहूँ आदि), दासी, दास, कुप्य (वस्त्र, किराना आदि), भाण्ड (बर्तनादि)

अंतरंग परिग्रह चौदह प्रकार का है - मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद।

परिग्रह के अन्य रूप -

आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह करना, सत् कार्यों में धन का उपयोग नहीं करना, दिन रात धन इकट्ठा करने की चिंता करना इत्यादि सब परिग्रह पाप के ही कारण समझना चाहिए।

परिग्रह पाप से बचने के निम्न उपाय है -

१. परिग्रह परिमाण व्रत ग्रहण कर संतोष धारण करना।

२. अपनी इच्छाओं, पंचेन्द्रिय के विषयों को सीमित करना।

३. धन के कारण उत्पन्न दु:ख, विपत्ति आदि का चिन्तन करना।

४. जीवन, धन, यौवन की नश्वरता के विषय में सोचना।

५. पंचेन्द्रिय के अच्छे-बुरे विषयों में राग-द्वेष नहीं करना।

६. जिन सूत्र - जिनवाणी का अध्ययन, स्वाध्याय करना।

७. अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वो के दिन गृह त्याग, पूर्ण परिग्रह त्याग रूप व्रत को स्वीकारना।

- **असीम सम्पत्ति अपने साथ भय को अवश्य लाती है, भयभीत व्यक्ति को सुख कहाँ?**
- **आत्मीय संबंध केवल समयदान से जीवित रहते हैं मोबाईल की घंटी बजते ही सारे आत्मीय संबंध टूट जाते हैं।**
- **तन को नहीं, तन में देखो तभी, चेतन दिखे ।**
- **घड़ी को नहीं, घड़ी में देखो तभी, वक्त ज्ञात हो।**

करनी का परिणाम

एक गरीब किसान था, वह आजीविका के लिए खेती करता था, किन्तु फसल अच्छी नहीं होने के कारण बेचारा परेशान रहता था।

एक दिन गर्मी के मौसम में वह खेत में पेड़ की छाया में बैठा था। तभी सामने बिल में से सर्प निकला और फण उठाकर खड़ा हो गया। उसके मन में आया कि इस सर्प की सेवा करें तो मेरी फसल अच्छी होगी।

यह सोचकर वह दूध लाया और एक बर्तन में डालकर बिल के पास रख आया। दूसरे दिन वह बर्तन देखने जाता तो उसमें दूध नहीं था और बर्तन में एक सोने की मुहर पड़ी थी। वह रोज ऐसा ही करने लगा।

एक दिन उसे किसी काम से बाहर जाना था, वह सोचता दूध कौन रखेगा? बहुत सोचकर उसने अपने बेटे से कहा कि बेटा खेत पर जाना और उस स्थान पर दूध रख आना। बेटे ने ऐसा ही किया। बेटे ने दूसरे दिन देखा बर्तन में एक सोने की मुहर है। मुहर देख वह सोचता है इसके बिल में बहुत सी मुहरें होंगी। उन्हीं में से एक-एक मुहर सर्प लाकर देता है, इसलिए इसे मारकर सारी मुहरें एक साथ प्राप्त कर लेनी चाहिए।

वह दूसरे दिन दूध लेकर गया और वहीं खड़ा हो गया। सर्प दूध पीने आया तो उसने एक बड़ा-सा डंडा फेंक कर मारा किन्तु निशाना चूक गया। सर्प ने शीघ्र ही चलकर उस बेटे को काट लिया जिससे वह थोड़ी देर के बाद मर गया।

जब उसका पिता वापस आया और उसने बेटे की करनी और मृत्यु का समाचार सुना तो उसे बहुत दु:ख हुआ। पर उसने कहा जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है।

पाठ्यक्रम - ६

६ ब | प्रथम तीर्थङ्कर-ऋषभदेव (भगवान आदिनाथ)

वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में जो चौबीस तीर्थङ्कर हुए उनमें सर्वप्रथम धर्मतीर्थ प्रवर्तक ऋषभ देव हुए। उनका संक्षिप्त जीवन परिचय इस प्रकार है-

वज्रजंघ और श्रीमति (ऋषभदेव व राजा श्रेयांस के पूर्व भव के जीव) ने पुण्डरीकिणी पुरी को जाते समय सरोवर के तट पर मुनि युगल के लिए आहार दान दिया, जिसके फलस्वरूप सम्यक्त्व रहित होने से मरण होने पर उत्तम भोग भूमि उत्तर कुरु क्षेत्र में आर्य-आर्या हुए तथा वहाँ पर प्रीतिंकर नामक मुनिराज से संबोधन प्राप्त कर उन्होंने सम्यग्दर्शन धारण किया एवं मरण कर स्वर्ग गए। पुन: वज्रसेन तीर्थङ्कर के पुत्र वज्रनाभि की पर्याय में चक्रवर्तित्व को प्राप्त कर पुन: राज-पाट त्याग कर दिगम्बर दीक्षा धारण कर सोलह कारण भावना भाते हुए तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध किया। आयु के अन्त समय में सल्लेखना पूर्वक मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुए। वे ही अगले भव में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव हुए।

अंतिम कुलकर नाभिराय और उनकी पत्नी मरुदेवी से ऋषभदेव का जन्म अयोध्या नगरी में हुआ। इन्हें वृषभनाथ व आदिनाथ भी कहते हैं। इस युग में जैनधर्म का प्रारंभ इन्हीं से माना जाता है। भोगभूमि के अवसान होने पर जबकि कल्पवृक्षों ने भोग्य सामग्री देना बंद कर दी तब उन्होंने आजीविका के साधनभूत असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह कर्मों की विशेष रूप से व्यवस्था की तथा देश, नगरों को सुविभाजित कर संपूर्ण भारत को ५२ जनपदों में विभाजित किया। लोगों को कर्मों के आधार पर इन्होंने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की व्यवस्था दी, इसीलिए इन्हें प्रजापति कहा जाने लगा।

ऋषभदेव की दो पत्नियाँ थीं सुनन्दा और नन्दा। इनके सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं, जिनमें सुनंदा से भरत और ब्राह्मी तथा नंदा से बाहुबली और सुंदरी प्रमुख हैं। इन्होंने अपनी ब्राह्मी और सुंदरी नामक दोनों पुत्रियों को क्रमश: अक्षर और अंक विद्या सिखाकर समस्त कलाओं में निष्णात किया। ब्राह्मी लिपि का प्रचलन तभी से हुआ। आज की नागरी लिपि को विद्वान उस ही का विकसित रूप मानते हैं।

एक दिन राजमहल में नीलांजना नामक देवी अप्सरा (नृत्यागंना) की नृत्य करते हुए आकस्मिक मृत्यु हो जाने से इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। फलत: अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को समस्त राज्य का भार सौंपकर दिगम्बरी दीक्षा धारण कर वन को तपस्या करने चले गए। दीक्षा के बाद वे छह माह तक ध्यान में बैठे रहे तथा उसके बाद छह-सात माह तक विधी पूर्वक आहार न मिलने से अन्तराय होता रहा। अत: लगभग १ वर्ष पश्चात् राजा श्रेयांस के यहाँ मुनिराज का आहार हुआ। आहार में मात्र इक्षु रस ही लिया। एक हजार वर्ष की कठोर तपश्चर्या के परिणामस्वरूप उन्होंने कैवल्य (सम्पूर्ण ज्ञान) प्राप्त कर समस्त भारत भूमि को अपने धर्मोपदेश से उपकृत किया। चूंकि उन्होंने अपने समस्त घातिया कर्मों को जीत लिया था, इसीलिए वे जिन कहलाए तथा उनके द्वारा प्ररूपित धर्म ''जैन-धर्म'' कहलाने लगा। अपने जीवन के अंत में तृतीय सुषमा-दुषमा काल की समाप्ति के तीन वर्ष आठ माह पन्द्रह दिन शेष रहने पर कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

भरत बहुत प्रतापी राजा हुए। उन्होंने अपने दिग्विजय द्वारा सर्वप्रथम चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। दीक्षा लेते ही उन्हे अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था, कैलाश पर्वत से वे मोक्ष पधारे।

- भगवान ऋषभदेव के शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष थी एवं आयु ८४ लाख पूर्व थी। शरीर का वर्ण स्वर्ण सदृश था।
- भगवान ऋषभदेव के समवशरण का विस्तार १२ योजन था। इनके ८४ गणधर थे, जिनमें प्रमुख ऋषभ सेन थे।

कल का दिन देखा किसने।
आज का दिन खोय क्यों?
जिन घड़ियों में हँस सकते हैं।
उन घड़ियों में रोय क्यों।।

पाठ्यक्रम - ६

६ स हमारे परम आराध्य (देव-गुरु-शास्त्र)

ज्ञानावरणादि कर्मों का तथा रागादि दोषों का जिनमें अभाव पाया जाए वे देव हैं। अरिहंत देव क्षुधादि अठारह दोषों से रहित, वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते हैं निम्नलिखित अठारह दोष अरिहंत के नहीं होते हैं-

१. क्षुधा रहित - आहारादि की इच्छा, भूख का अभाव।
२. तृषा रहित - पानी की इच्छा, प्यास का अभाव।
३. भय रहित - किसी भी प्रकार का डर उत्पन्न नहीं होना।
४. राग रहित - प्रेम, स्नेह, प्रीति रूप परिणामों का अभाव।
५. द्वेष रहित - द्वेष, शत्रुता रूप परिणामों का अभाव।
६. मोह रहित - गाफिलता, विपरीत ग्रहण करने रूप भावों का अभाव।
७. चिन्ता रहित - मानसिक तनाव का नहीं होना।
८. जरा रहित - दीर्घ काल तक जीवित रहने पर भी बुढ़ापा नहीं आना।
९. रोग रहित - शारीरिक व्याधियों का अभाव।
१०. मृत्यु रहित - पुनर्जन्म कराने वाले मरण का अभाव।
११. खेद रहित - मानसिक पीड़ा/ पश्चात्ताप का नहीं होना।
१२. स्वेद रहित - पसीना आदि मलों का शरीर में अभाव।
१३. मद रहित - अहंकारपने का अभाव, गर्व, घमंड रहितता।
१४. अरति रहित - किसी भी प्रकार की पीड़ा/ दु:ख नहीं होना।
१५. जन्म रहित - पुनर्जन्म, जीवन धारण नहीं करना।
१६. निद्रा रहित - प्रमाद, थकान जन्य शिथिलता का न होना।
१७. विस्मय रहित - आश्चर्य रूप भावों का नहीं होना।
१८. विषाद रहित - उदासता रूप भावों का अभाव।

इन राग - द्वेष रूप अशुभ परिणामों के क्षय हो जाने पर जीव वीतरागी-वीतद्वेषी कहा जाता है। जिन्होंने सभी प्रकार के धन-धान्य, सोना-चाँदी, घर-परिवार, दुकान, आभूषण, वस्त्रादि का त्याग कर दिया है। जो षट्काय के जीवों की विराधना के कारणभूत किसी भी प्रकार का ''सावद्य-कार्य'' नहीं करते तथा जिन्होंने अपने आत्म तत्व की उपलब्धि हेतु जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित मोक्षमार्ग को स्वीकार किया है, ऐसे निर्ग्रन्थ श्रमण भी वीतरागता के उपासक होने से वीतरागी कहे जाते हैं।

न बोलने में बोलने से अधिक भला छुपा है।

खुद को देखा, प्रभु दर्पण में सो, प्रभुता दिखे ।

तत्वाभ्यास की धुन

समाधि तंत्र में उदाहरण दिया कि माँ और बेटा मेले में जाते हैं लेकिन बेटे की अंगुली छूट जाती है तो बेटा रोने लगता है। उसे रोते देखकर सभी उससे पूछते हैं कि बेटा कहाँ रहता है? तो वह कहता है- माँ। बेटा कुछ खाना है? माँ। कुछ पीना है? माँ। अरे पागल हो, बुद्धु हो, कुछ समझता नहीं कि मैं कुछ पूछ रहा हूँ, बस माँ माँ की रट लगा रखी है। तब भी बालक माँ ही कहता जाता है। अत: उसे माँ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखता।

ठीक जैसे बेटे को माँ की धुन है, ऐसे ही यदि हमें सम्यक्त्व की प्राप्ति करना है तो तत्वाभ्यास की धुन लगना चाहिए।

हमें वीतरागी भगवान को ही नमस्कार करना चाहिए। उनकी ही स्तुति, वंदना, पूजन करनी चाहिए। अन्य रागी-द्वेषी देवी-देवता हमारे आराध्य नहीं हो सकते, इनकी आराधना घोर संसार का कारण एवं अति दु:ख का कारण है। भगवान हमारे लिए आदर्श, पथ-प्रदर्शक हुआ करते हैं। उनके दर्शन से हमें अपने शुद्ध स्वरूप, स्वभाव का ज्ञान होता है यदि भगवान कहे जाने वाले भी सामान्य मनुष्यों के समान ही विषय-भोगों में लीन हैं, स्त्रियों से सहित हैं, दूसरों की हिंसा करने में रत हैं, नाना-आभूषणों से शृंगारित हैं, अस्त्र-शस्त्र अपने पास रखते हैं तो हममें और उनमें क्या विशेष अंतर रहा, हम उनके दर्शनों से क्या प्राप्त कर सकते हैं ? कुछ भी नहीं। यदि आप कहें इससे उनका शक्तिशाली होना, ऐश्वर्यता, स्वामीपना प्रगट होता है वे हमें भी

सुखी बना सकते हैं, हमारे दु:खों को दूर कर सकते हैं तो फिर राजा-महाराजा, धनपति सेठ आदि भी भगवान माने जाएँगे उनकी भी पूजा करनी पड़ेगी वह ठीक नहीं किन्तु जो हमारे पास है ऐसे राग-द्वेष, धनादि से रहित वीतरागी प्रभु के दर्शन से ही आत्मिक शांति की उपलब्धि दु:खों का नाश एवं सत्य का ज्ञान हो सकता है।

सर्वज्ञ - ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों के क्षय से जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है जिनके ज्ञान में तीन लोक के समस्त चराचर पदार्थ युगपत हाथ में रखी स्फटिक मणी के समान झलकते हैं, वे सर्वज्ञ कहलाते हैं।

हितोपदेशी - पूर्ण ज्ञानी होकर संसार के प्राणियों के आत्म कल्याणार्थ हित-मित-प्रिय वचनों के माध्यम से उपदेश देने वाले प्रभु हितोपदेशी कहलाते हैं।

सच्चे शास्त्र - वीतरागी श्रमणों द्वारा रचित ग्रन्थ सम्यक् मोक्षमार्ग का कथन करने वाले, प्राणी मात्र के हित का जिसमें उपदेश हो ऐसे ग्रन्थ सच्चे शास्त्र कहलाते हैं।

सच्चे गुरु- विषयों की आशाओं से अतीत, निरारम्भी, निष्परिग्रही, ज्ञान, ध्यान, तप में लीन, दिगम्बर मुद्राधारी मुनि सच्चे गुरु कहलाते हैं।

- **इच्छा के निरोध से ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, इसलिए बड़े-बड़े योगीश्वर लोग अपनी इच्छाओं का निरोध ही करते हैं। यही कारण है कि चतुर्निकाय के देव आकर उनके चरणों को नमस्कार करते हैं।**

गोम्मटेस-थुति (प्राकृत)

विसट्ट- कंदोट्ट दलाणुयारं, सुलोयणं चंद- समाण- तुण्डं।
घोणाजियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥1 ॥

अर्थ : जिनके (**सुलोयणं**) सुन्दर नेत्र (**विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं**) विकसित नीलकमल के दल (भीतरी भाग) का अनुशरण करने वाले हैं (**तुण्डं**) मुख (**चंद-समाण**) चन्द्रमा के समान सौम्य है तथा (**चम्पय-पुप्फसोहं**) चम्पक पुष्प की शोभा को जिनकी (**घोणा-जियं**) नासिका ने जीत लिया है (**तं**) उन (**गोम्मटेसं**) गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को (**णिच्चं**) सदा (**पणमामि**) मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

अच्छाय-सच्छं जलकंत-गंडं, आबाहु-दोलंत-सुकण्ण-पासं।
गइंद-सुण्डुज्जल-बाहुदण्डं तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥2 ॥

अर्थ : जिनके (**गंडं**) कपोल (गाल) (**जलकंत**) जल के समान स्वच्छ कान्ति वाले (**सुकण्ण-पासं**) सुन्दर दोनों कान (**आबाहु दोलंत**) कन्धों तक दोलायित/लम्बे (**बाहुदण्डं**) दोनों भुजाएँ (**गइंद-सुण्डुज्जल**) गजराज की सूंड़ के समान सुन्दर लंबी थी (**तं**) उन (**अच्छाय-सच्छं**) आकाश के समान निर्मल (**गोम्मटेसं**) गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को (**णिच्चं**) सदा (**पणमामि**) मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

सुकण्ठ-सोहा-जिय दिव्व-संखं, हिमालयुद्दाम-विसालकंधं।
सुपेक्खणिज्जायलसुट्ठु मज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥3 ॥

अर्थ : (**सुकण्ठ-सोहा**) मनोहारी कंठ की शोभा से जिन्होंने (**जिय-दिव्व संखं**) अनुपम शंख की शोभा को जीत लिया है (**हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं**) हिमालय के समान उन्नत कंधे और विशाल हृदय वाले हैं तथा जिनका (**सुट्ठुमज्झं**) सुन्दर मध्यभाग/कटिप्रदेश (**सुपेक्खणिज्जायल**) अच्छी तरह से देखने योग्य और निश्चल है (**तं**) उन (**गोम्मटेसं**) गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को (**णिच्चं**) सदा (**पणमामि**) मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

विंज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिहामणि सव्व- सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय- पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥4 ॥

अर्थ : (**सव्व-सुचेदियाणं**) सभी सुन्दर चैत्यों के (**सिहामणि**) शिखामणि तथा (**विंज्झायलग्गे**) विन्ध्यगिरि के अग्रभाग/शिखर में (**पविभासमाणं**) प्रकाशमान/शोभायमान (**तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं**) तीन लोक के जीवों को आनन्द देने में पूर्ण चन्द्रमास्वरूप (**तं**) उन (**गोम्मटेसं**) गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को (**णिच्चं**) सदा (**पणमामि**) मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

लया-समक्कंत-महासरीरं, भव्वा-वलीलद्ध-सुकप्प-रुक्खं।
देविंद-विंदच्चिय-पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥5 ॥

अर्थ : (**लया-समक्कंत-महासरीरं**) लताओं से व्याप्त विशाल शरीर वाले (**भव्वावलीलद्ध-सुकप्परुक्खं**) भव्यसमूह के लिये प्राप्त हुए श्रेष्ठ कल्पवृक्ष स्वरूप तथा (**देविंदविंदच्चिय-**

पायपोम्मं) देवेन्द्रों के द्वारा अर्चित/पूजित चरणकमल वाले (**तं**) उन (**गोम्मटेसं**) गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को (**णिच्चं**) सदा (**पणमामि**) मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

दियंबरो जो ण च भीइ- जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि-जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥6 ॥

अर्थ : (**जो दियंबरो**) जो दिगम्बर हैं (**भीइजुत्तो**) भय युक्त (**ण**) नहीं हैं अर्थात् निर्भय हैं (**च**) और (**अंबरे**) वस्त्र में (**सत्तमणो ण**) आसक्त मन वाले नहीं हैं (**विशुद्धा**) विशुद्ध हैं (**च**) और (**सप्पादि-जंतुप्फुसदो**) सर्पादि जंतुओं के स्पर्श से भी (**कंपो ण**) कम्पायमान नहीं हैं (**तं**) उन (**गोम्मटेसं**) गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को (**णिच्चं**) सदा (**पणमामि**) मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

आसां ण जो पोक्खदि सच्छदिट्ठि, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥7 ॥

अर्थ : (**जो सच्छदिट्ठि**) जो निर्मल समदृष्टि (**आसां**) आशा-तृष्णा को (**पोक्खदि ण**) पुष्ट नहीं करते (**हयदोसमूलं**) दोषों के मूल कारण मोह को नष्ट करने वाले (**सोक्खे**) इन्द्रिय सुख में (**वंछा ण**) इच्छा रहित (**विरायभावं**) विरागभाव वाले और (**भरहे**) भरत भाई में (**विसल्लं**) शल्य रहित हैं (**तं**) उन (**गोम्मटेसं**) गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को (**णिच्चं**) सदा (**पणमामि**) मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

उपाहि-मुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय- मोह- हारयं।
वस्सेय-पज्जंतुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥8 ॥

अर्थ : जो (**उपाहिमुत्तं**) उपाधियों/वस्त्राभूषणों/संयोगों से रहित (**धण-धाम-वज्जियं**) धन मकानादि बाह्य परिग्रह रहित (**सुसम्मजुत्तं**) समताभाव सहित (**मय-मोह-हारयं**) मद व मोह को हरण/नष्ट करने वाले तथा (**वस्सेय-पज्जंतुववास-जुत्तं**) एक वर्ष पर्यन्त उपवास धारण करने वाले (**तं**) उन (**गोम्मटेसं**) गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को (**णिच्चं**) सदा (**पणमामि**) मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

दीपक और तलवार

भरत चक्रवर्ती के पास एक बार एक जिज्ञासु पहुँचा। उसे इस बात में संदेह था कि भरत चक्रवर्ती हैं, 96 हजार रानियाँ हैं, फिर भी इतना बड़ा तत्त्वज्ञ और सम्यग्दृष्टि कैसे? वह चक्रवर्ती के पास पहुँचा और कहा कि ''प्रभु! मैं आपके जीवन का रहस्य जानना चाहता हूँ। मैं एक से परेशान हूँ आप 96 हजार को कैसे संभालते हैं? फिर भी निस्पृह और अनासक्त कैसे बने हो? चक्रवर्ती ने सुना और कहा तुम्हारी बात का जवाब मैं बाद में दूँगा, पहले एक काम करो मेरे रनवास में घूम आओ और देखो वहाँ क्या-क्या है। एक बार देख लो फिर मैं बताऊँगा कि मेरे जीवन का रहस्य क्या है।

वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि आज चक्रवर्ती के रनवास में घूमने का मौका मिलने वाला है। जैसे ही वह जाने को हुआ तो चक्रवर्ती ने कहा सुनो ऐसे नहीं, उसके हाथ में एक दीप पकड़वाया गया। और कहा इस दीपक के प्रकाश में तुम्हें पूरे रनवास का चक्कर लगाकर आना है, पर एक शर्त है, ये चार तलवारधारी तुम्हारे चारों ओर हैं। रास्ते में न तो दीपक बुझना चाहिए, न ही एक बूँद तेल गिरना चाहिए। यदि दीपक बुझा तो तुम्हारे जीवन का दीपक बुझ जाएगा और तेल गिरा तो तुम्हारी गर्दन भी नीचे गिर जाएगी। उसने सोचा फँस गए अब तो। पर क्या किया जाए चक्रवर्ती के साथ उलझा था और कोई मार्ग नहीं था। बड़ी सावधानी के साथ वह पूरे रनवास का चक्कर लगाकर आया और जैसे ही चक्रवर्ती के पास पहुँचा, इससे पहले कि वह कुछ कहे, चक्रवर्ती ने पूछा बताओ तुमने क्या-क्या देखा?

उसने कहा महाराज तलवार और दीपक के अलावा और कुछ नहीं देखा तो चक्रवर्ती ने कहा कि ''यही है मेरे जीवन का रहस्य। तुम्हें ये भोग और विलास दिखते हैं मुझे अपनी मौत की तलवार दिखती है।'' यदि मौत की तलवार देखते रहोगे तो जीवन में कभी अनर्थ घटित नहीं होगा। हर व्यक्ति को ऐसी प्रतीति करना चाहिए, हर व्यक्ति को अपने अंदर ऐसा विवेक जागृत करना चाहिए, ऐसा बोध हमारे अंदर प्रकट होता है तभी पाप से अपने आप छुटकारा मिल सकता है।''

अभ्यास

१. त्रस एवं स्थावर जीव किसे कहते हैं? वे कौन-कौन से हैं?
२. दूरान्दूर भव्य किसे कहते हैं? उसका दूसरा नाम क्या है?
३. सम्राट कैसा भोजन, किस कारण से करता था?
४. भगवान महावीर का जन्म कब और कहाँ हुआ था?
५. सासु माँ और दामाद क्यों रो रहे थे?
६. देव-शास्त्र-गुरु पर अटल श्रद्धान कैसा होना चाहिए?
७. छोटे भाई ने धन की थैली समुद्र में क्यों फैंकी?
८. मनुष्य गति कैसे प्राप्त होती है? इसकी क्या विशेषता है?
९. गृहस्थ के छह कर्मों के नाम एवं पाँच क्रूर कर्म कौन-कौन से हैं?
१०. सोलह कारण भावनाएँ कौन-कौन सी हैं?
११. स्वाध्याय आवश्यक क्यों है?
१२. महासती अतिमव्वे ने क्या-क्या दान किया था?
१३. कुशील पाप क्या कहलाता है? उससे बचने के कोई तीन उपाय बताइए।
१४. 'बड़ा कौन' ये विवाद कैसे सुलझा?
१५. आदिनाथ भगवान को प्रजापति क्यों कहा जाता है?
१६. हमें वीतरागी देव को ही नमस्कार करना चाहिए, क्यों?
१७. अठारह दोष कौन-कौन से हैं?

ब. श्लोक छंद को पूर्ण करें-

१. त्रिदण्डे ---------- वीतरागम्।
२. ग्वाला ---------- जिनवाणी माँ।
३. गिरे न ---------- साथ।
४. रात्री भोजन ---------- गायें।
५. दुःखों ---------- भावना स्वामी।
६. छत्रत्रय ---------- सुप्रभातम्।
७. दियंबरो---------- णिच्चं।

स. श्लोक का अर्थ लिखें-

१.न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढ़ो,
न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥

२. उद्दण्ड- दर्पकरिपो विमलामलाङ्ग,
स्थेमन् ननन्तजिदनन्त सुखाम्बुराशे।
दुष्कर्मकल्मष- विवर्जित- धर्मनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥

३. विंज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिहामणि सव्व- सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय- पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

द. परिभाषा लिखो।

१. अजीव २. अभव्य ३. नरक गति ४. मसि कर्म ५. अभीक्ष्ण संवेग ६. दान आवश्यक
७. हिंसा पाप ८. वीतरागी ९. सच्चे शास्त्र।

० अन्य ग्रन्थों से खोजें, ज्ञान बढ़ाएँ, पढ़ें और पढ़ाएँ।

१. अरिहन्त परमेष्ठी संसारी जीव हैं क्यों और कैसे?
२. जीव के अन्य दस पर्यायवाची नाम कौन-कौन से हैं?
३. नारकी गति को नारक गति भी कहते हैं क्यों?
४. तिर्यंच जीव की कैसी दशा होती है?
५. चारों गति के जीव कहाँ कहाँ रहते हैं?
६. दान किसे, कैसे देना चाहिए, दान का क्या फल होता है?
७. द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा को उदाहरण सहित समझाइए।
८. राज वसु की कथा किस प्रकार है?
९. अब्रह्म सेवन के दोष और दुष्परिणाम क्या हैं?
१०. परिग्रह पाप से उत्पन्न दुःख कैसा होता है?
११. टी.वी. देखने, व्यसन करने से कौन-कौन सा पाप होता है? कैसे?
१२. कुशील, अब्रह्म पाप से बचने के लिए हमें क्या करना चाहिए?
१३. यमपाल चाण्डाल और मृगसेन धीवर की क्या कथा है?
१४. शिवभूति ब्राह्मण की कैसी कथा है?
१५. घर में रहकर पाँच पापों से कितना बच सकते हैं?
१६. तीर्थङ्कर ऋषभदेव सम्बन्धी १० नई जानकारी बताएँ?
१७. गोम्मटेश्वर बाहुबली प्रतिमा निर्माण का इतिहास कैसा है?
१८. भरत चक्रवर्ती के पास कितना वैभव था?